

आदिवासी लोक

डॉ० मधु कौशिक,

हिंदी-विभाग, रामानुजन कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

आदिवासी लोक अपनी भौगोलिक स्थितियों के कारण समाज में हाशिये पर रहा है। अपने लोक में विचरते ये आदिवासी प्रकृति और नैसर्गिकता को ही अपने जीवन का आधार मानते हैं। आदिवासी संसार को निर्मित नहीं किया गया बल्कि ये लोक तो सदा से ही प्रकृति की गोद में पला-बड़ा है। यदि आज का सभ्य संसार जीवन के सहज स्वाभाविक और सृजनशील रूप से परिचित होना चाहता है तो उसे आदिवासी लोक में झांकना होगा; उसे समझना होगा क्योंकि आदिवासी लोक में प्रकृति प्रेम, आदिम सौंदर्य बोध, नृत्य-गीत, संगीत, धार्मिक आस्थाएँ, त्योहार, उत्सव, मेले, लोक-कथाएँ, सामाजिक-संस्कार, मनोरंजन की गतिविधियां सभी हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं जिन्हें हमें सहेज कर रखना होगा।

आदिवासी साहित्य और संस्कृति लेख में जनार्दन मिश्र लिखते हैं – “जंगल, पठार, पेड़-झाड़ियों, लता-गुल्मों के बीच-बीच में एक-ब-एक दिख जाने वाले इन गांवों, लिपी-पुती दीवारों, घास-फूस के तले रहने वाले ये मनुष्य आदिवासी हैं। मनुष्य के अंदर उठने वाले विष, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, पश्चाताप, प्रतिशोध से परे नहीं हैं ये। इन दुर्भावनाओं का निवास इनके हृदय में भी है प्रकृति का सानिध्य उनमें हर पल साफ स्पष्ट अभिव्यक्ति की प्रेरणा देता रहता है। दुर्भावनाओं के पक्ष में डूबे रहना ये क्या जाने? बरसाती नालों के प्रवाह की तरह चढ़ता है ज्वार उनमेंज्वार उतरते ही निर्मल दर्पण सदृश्य बहने लगता है दृजल, प्रकाश दौड़ता हुआ कल-कल-कल.....।”

हमारा संविधान कहता है कि आदिवासी समाज इस देश का एक विशिष्ट सांस्कृतिक समुदाय हैं। अपनी विशिष्टता में भी ये कई प्रश्नों को हमारे समक्ष उठाते हैं। भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग होने के कारण इनसे जुड़े प्रश्नों और इनकी समस्याओं पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है। समाज में इनके प्रति होने वाले भेदभाव, इनका आर्थिक शोषण, इनका भाषाई एवं धार्मिक सवाल और अति महत्वपूर्ण विस्थापन से जुड़े प्रश्न, आज न केवल राजनीतिक गलियारों में हलचल पैदा किए हुए हैं बल्कि ये प्रश्न साहित्य की धड़कन बन एक नए विमर्श का रूप भी ले रहे हैं। अपनी स्वार्थी मजबूरियों के चलते आज मनुष्य इस आदिवासी समाज को टगने में लगा है। उसके विकास की दुहाई दे वह स्वयं की स्वार्थ सिद्धि में ही संलग्न है। आदिवासी समाज आज आधुनिक भारतीय राष्ट्र के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन खड़ा हुआ है। ये प्रश्न आज बौद्धिक हलकों को गंभीर विचार मंथन के लिए उद्देलित किए हुए है। आदिवासी समाज आज जिस यंत्रणा को भोग और देख रहा है उसका वर्णन कर पाना लगभग असंभव-सा ही है। एक तरफ तो भारतीय समाज इसे अपनी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग मानता है और इससे अलग वह अपनी संस्कृति की पूर्णता की कल्पना भी नहीं करना चाहता। दूसरी ओर वह इस समाज को अपने विकास की बाधा मान इससे किनारा करने में भी गुरेज नहीं करता। अपने को अपनाए जाने और छोड़े जाने के खेल ने इन्हें असमंजस की स्थिति में डाल दिया है। जहाँ ये स्वयं की दिशा टटोलना चाहते हैं। ऐसे वातावरण में कुछ प्रश्न

उठाना लाजमी हो जाता है। जैसे— आदिवासी समाज की मूल समस्याएँ क्या हैं ? ये समाज अपनी समस्याओं को बताने से क्यों परहेज करता है ? आज ये समाज स्वयं को भारतीय समाज से कटा हुआ क्यों महसूस करता है ?

आदिवासी शब्द अपनी संरचना में दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिल कर बना है और इसका अर्थ 'मूल निवासी' है। भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। पुरातन लेखों में आदिवासियों को अत्विका और वनवासी भी कहा गया है। संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' शब्द का उपयोग किया गया है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में संथाल, गोंड, मुंडा, खड़िया, हो, बोडो, भील, खासी, सहरिया, गरासिया, मीणा, उरांव, बिरहोर आदि आते हैं। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक हैं; जबकि भारतीय पूर्वोत्तर राज्यों में जैसे मिजोरम आदि में ये बहुसंख्यक हैं। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में 'अनुसूचित जनजातियों' के रूप में मान्यता दी है। आदिवासियों का अपना धर्म है। ये प्रकृति पूजक हैं और जंगल, पहाड़, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते हैं। आधुनिक काल में जबरन बाह्य संपर्क में आने के फलस्वरूप इन्होंने हिंदू, ईसाई एवं इस्लाम धर्म को भी अपनाया है। अंग्रेजी राज के दौरान बड़ी संख्या में ये ईसाई बने तो आजादी के बाद इनके हिंदूकरण का प्रयास तेजी से हुआ है। परंतु आज ये स्वयं की धार्मिक पहचान के लिए संगठित हो रहे हैं। जब देश में जनगणना होती है तो उसमें आदिवासी का धर्म लिखा जाता है ? उनसे पूछा जाता है कि वे हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख क्या हैं ? यदि इनमें से कोई नहीं तो 'अन्य' हैं। 'अन्य' उनका धर्म लिखा जाता है। संविधान द्वारा दिए गए धर्म के अधिकार को इन्होंने अपनी

अस्मिता से जोड़ दिया है। यही कारण है कि अब ये भारत सरकार से जनगणना में अपने लिए अलग से धार्मिक कोड की मांग कर रहे हैं। आदिवासी साहित्यकार रामदयाल ने इनके धर्म से जुड़े सवाल को धार देने का काम किया है।

आदिवासी भाषाओं का सवाल भी अति महत्वपूर्ण है। आदिवासी साहित्य की रचना आदिवासी भाषाओं में न होने के कारण इनकी भाषाओं का विलोप लगभग तय माना जा रहा है। महाराष्ट्र में जहाँ आदिवासियों को लेकर कई सम्मेलन हो चुके हैं वहीं यहाँ के आदिवासी लेखक भी मराठी में ही साहित्य रचना कर रहे हैं। बहुत कम लोग ही आदिवासी भाषाओं में लिख रहे हैं। 'संथाली' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हो जाते हैं; क्योंकि वे अपनी भाषा में लिखते हैं। इनके सम्मेलन न केवल झारखंड में होते हैं बल्कि विश्व स्तर पर भी ये अपनी पहचान बनाए हुए हैं। सुनीति कुमार चटर्जी जो इतने बड़े भाषाविद् हुए उन्होंने ये भविष्यवाणी कर रखी है कि "आदिवासी भाषाएं अपनी मौत मरती जाएंगी, दो-तीन सौ साल में खत्म हो जाएंगी। इसका जवाब आदिवासी विमर्श को देना है कि क्या ये भाषाएं खत्म हो जाएंगी, मर जाएंगी या आदिवासियों के जीवन में उनकी संस्कृति के लिए इसका कोई महत्व है। आदिवासी विमर्श को बड़ी गंभीरता से सोचने की जरूरत है कि अपनी भाषा के बिना वो अपनी संस्कृति को कब तक बचाकर रख सकते हैं ?" इस चिंता के बावजूद आदिवासी साहित्य वाचिक तौर पर अपनी मूल आदिवासी भाषाओं में बहुत समृद्ध और विपुल है।

भारत में आदिवासी साहित्य पांच भाषा परिवार के भाषाओं में वाचिक और लिखित रूप में उपलब्ध है — आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार, चीनी-तिब्बती भाषा परिवार, द्रविड भाषा परिवार, अंडमानी भाषा परिवार, भारोपीय आर्य भाषा परिवार। भारत में लिखित आदिवासी साहित्य की शुरुआत बीसवीं सदी के आरंभिक दौर में

होती है जब औपनिवेशिक दिनों में आदिवासी समुदाय आधुनिक शिक्षा के संपर्क में आते हैं। विशेषकर, झारखंड और उत्तर-पूर्व के आदिवासी इलाकों में। तब से लेकर आज तक अंग्रेजी और हिंदी, बांग्ला, ओड़िया, असमी, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं में आदिवासी साहित्य लेखन निरंतर प्रगति पर है।

आज आदिवासी समाज पर खतरे के बादल मंडरा रहे हैं। आदिवासी समाज अपनी जमीन से जुड़ा है। इनकी जमीन जहाँ प्राकृतिक संपदा का भंडार है वहीं इस भंडार के रहते हुए भी इनकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रही हैं। ये लोग नहीं जानते कि इस संपदा का प्रयोग किस प्रकार किया जाए? इनकी इसी अनभिज्ञता का लाभ राजनेता उठा रहे हैं। इन्हें मुख्यधारा में शामिल करने के नाम पर इन्हें बहलाया फुसलाया जाता है। इसके अलावा कुछ लोग यहाँ की संपदा का प्रयोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए ही करना चाहते हैं। ये लोग आधुनिकता और सुविधाओं के नाम पर इनका शोषण कर इन्हें बाहर का रास्ता दिखाते हैं। बड़ी-बड़ी कंपनियों की दृष्टि इनकी भूमि पर है जिससे इनके विस्थापन का संकट पैदा हो गया है। इस तरह आदिवासी क्षेत्रों में विकास के नाम पर टाटा, बिड़ला, पोस्को, वेदांता जैसी कंपनियाँ अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगी हैं। उड़ीसा में पास्को जैसी कंपनी आदिवासियों को अपनी जमीन से बेदखल कर रही है ताकि वो अपना प्रोजेक्ट पूरा कर सके। छत्तीसगढ़ का इलाका आदिवासी बहुल होने के साथ-साथ खनिज संपदा से भी समृद्ध है। यहाँ माओवादियों द्वारा की जाने वाली हिंसा-प्रतिहिंसा ने न केवल देश के समक्ष समस्या उत्पन्न की है बल्कि इनके बीच जीने वाले आदिवासियों को भी खतरे में डाल दिया है। आदिवासी समाज, भारतीय समाज का हिस्सा हैं। इनकी संस्कृति से स्वयं को विलग करना अपने ही शारीरिक अंग को स्वयं से विलग करने के समान है, ये जानते हुए भी हमारा समाज केवल

अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए इनका प्रयोग करना चाहता है। विज्ञान और विकास के नाम पर यदि किसी समुदाय को मिटाने का काम किया जाता है तो ऐसा विकास किस काम का? जो तुमसे तुम्हारी पहचान ही छीन ले। अपने आर्थिक शोषण और विस्थापन को लेकर इनमें असंतोष गहराता जा रहा है। यह असंतोष इनकी आँखों में स्पष्ट दिखाई भी देने लगा है। समाज का यह वंचित वर्ग न केवल समाज में हाशिए पर अवस्थित दिखाई देता है बल्कि साहित्य में भी यह लंबे अरसे तक हाशिये पर रहा; किन्तु आज इनके भीतर अपने संघर्षों को लेकर एक मशाल प्रज्वलित हो चुकी है। इसका कारण हमारे संवैधानिक प्रावधान हैं। संघर्ष करने की 'चेतना' को ही साहित्यिक दृष्टि से विमर्श का नाम दिया जाता है। हिंदी साहित्य में भी अब स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श और आदिवासी विमर्श को एक विशेष जगह मिली है। आदिवासी विमर्श हिंदी के अस्मितावादी विमर्शों में एक खास पहचान बना चुका है। इस नवीन विमर्श को लेकर साहित्य की हर विधा में लिखा जा रहा है। चाहे वह उपन्यास, कहानी, नाटक या फिर कविता ही क्यों न हो। मीडिया और सिनेमा का पर्दा भी इससे अछूता नहीं है। इन सभी में आदिवासी समाज की आंतरिक पीड़ा, दयनीय स्थिति और शोषणपूर्ण स्थिति का चित्रण किया जा रहा है। इस संदर्भ में हिंदी कविता का जिक्र करना अनिवार्य हो जाता है। आज समकालीन हिंदी कविता में आदिवासियों की जीवन स्थितियों, उनकी आकांक्षाओं, उनके संघर्षों और सपनों को पुरजोर तरीके से व्यक्त किया जा रहा है। वाहरु सोनवने की 'स्टेज' कविता में इसे देखा जा सकता है। इस कविता में दर्शाया गया है कि जो व्यक्ति इनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं, वह कितनी वास्तविक है।

"और 'वे' मंच पर खड़े होकर

हमारा दुख हमसे कहते रहे।

हमारा दुख हमारा ही रहा।

कभी उनका नहीं हो पाया”

पूँजीवादी व्यवस्था के चलते आदिवासी समाज की अस्मिता को खतरा पैदा हुआ है। इस व्यवस्था ने केवल अपने लाभ के लिए इनका भरपूर शोषण किया है। विस्थापन और रोटी की समस्या से जूझ रहे इस समाज के पास कमाने का कोई साधन भी नहीं है। ऐसे में अपराधी गतिविधियों में इनकी भागीदारी बढ़ती जा रही है। नकसलवाद की पैदाइश इसी की देन है। इसके साथ ही सरकार द्वारा लाई जाने वाली योजनाएँ इन तक नहीं पहुँच पातीं। इन योजनाओं का प्रयोग व्यवस्था के लोग अपने ही हितों को साधने में करते हैं।

आदिवासी समाज जिस परंपरा, संस्कृति, लोक-कला और परंपरागत खेलों, गीत-संगीत का वाहक बना हुआ है, वह अब विलुप्तीकरण के कगार पर है। यह समाज अपनी संस्कृति और मौखिक परंपरा को ही अपनी पहचान मानता है। किन्तु भूमंडलीकरण और बाजारवाद के इस दौर में इनकी संस्कृति और परम्पराओं को बचाना हमारे लिए एक चुनौती बन गया है। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में दलितों और आदिवासियों की एकजुटता ने सामाजिक आंदोलनों का रूप ग्रहण कर लिया था। अपने मुद्दों, मांगों और मुक्ति को लेकर इन्होंने सामूहिक अभियान चलाया।

यदि इस समाज की एतिहासिक पृष्ठभूमि की बात की जाए तो इनका निवास वनों, पर्वतीय अंचलों या बस्तियों में होता है। इनका जीवन आदिम है और वेशभूषा विचित्र। इन्हें आज भी आदमी की नस्ल के रूप में एक अजूबे की तरह पेश किया जाता है। लोग उन्हें सामान्य मनुष्य के तौर पर नहीं बल्कि जंगली, वनवासी, असभ्य और संविधान में आरक्षित मनुष्य के रूप में परिभाषित करते हैं। आदिवासी समाज की इस विडम्बना पूर्ण स्थिति को महादेव टोप्पो की कविता 'त्रासदी' अभिव्यक्त करती है..

“इस देश में पैदा होने का

मतलब है—

**आदमी का जातियों में बंट जाना
और गलती से तुम अगर हो गए पैदा**

जंगल में

तो तुम कहलाओगे

आदिवासी—वनवासी—गिरिजन

वगैरह—वगैरह

आदमी तो कम से कम

कहलाओगे नहीं ही।”

परंतु फिर भी इनकी संस्कृति, भाषाएँ, रीतिरिवाज और विश्वास अपनी प्रकृति में विशिष्ट हैं। किसी स्थान पर लंबे वक्त तक और स्थायी रूप से बसे रहने के बावजूद जब इन्हें इनकी भूमि से बेदखल करने की साजिश की जाती है तो, ये समुदाय आंदोलनों की राह पर चल पड़ता है और साहित्य भी अपना धर्म निभाते हुए एक विमर्श को जन्म दे देता है।

आदिवासी समाज के संदर्भ में आज विकास की अवधारणा को एक नए दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता महसूस होने लगी है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सुधार और औद्योगिक विकास के लिए जो खनिज संपदा और जंगल पहाड़ चाहिए, वे सब आदिवासी इलाकों में ही उपलब्ध हैं। ऐसे में इनके क्षेत्रों को बलात अपने कब्जे में कर इन्हें अपनी जीवन-शैली, समाज-संरचना और सांस्कृतिक मूल्यों से वंचित कर देना क्या सही है ? क्या हमारा कर्तव्य नहीं कि हम इन जनजातीय समूहों के मानवीय अधिकारों की रक्षा करें। आदिवासी साहित्य के रांची घोषणा-पत्र में स्पष्ट किया गया है कि आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्त उसमें आदिवासी दर्शन का होना है जिसके मूल तत्व हैं

- "प्रकृति की लय—ताल और संगीत का जो अनुसरण करता हो।
- जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता हो।
- जिसमें पुरखा—पूर्वजों के ज्ञान—विज्ञान, कला—कौशल और इंसानी बेहतरी के
 - अनुभवों के प्रति आभार हो।
- जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें।
- जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालसा का नकार करता हो।
- जिसमें जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा हो।
- जिसमें सृष्टि और समष्टि के प्रति कृ तज्ञता का भाव हो।
- जो धरती को संसाधन की बजाय मां मानकर उसके बचाव और रखाव के लिए खुद
 - .को उसका संरक्षक मानता हो।
- जिसमें रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि का विशेष आग्रह न हो।
- जो हर तरह की गैर—बराबरी के खिलाफ हो।
- जो भाषाई और सांस्कृतिक विविधता और आत्मनिर्णय के अधिकार पक्ष में हो।
- जो सामंती, ब्राह्मणवादी, धनलोलुप और बाजारवादी शब्दावलियों, प्रतीकों, मिथकों
 - .और व्यक्तिगत महिमामंडन से असहमत हो।
- जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को
 - .अपना दार्शनिक आधार मानते हुए रचाव—बचाव में यकीन करता हो।

- सहानुभूति, स्वानुभूति की बजाय सामूहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर—संगीत हो।

उपर्युक्त दर्शन से विमुख हो क्या हम अपना वास्तविक विकास कर सकते हैं ? शायद कदापि नहीं। भारत के प्रमुख आदिवासी साहित्यकार सुशीला सामद, रघुनाथ मुर्मू, तेमसुला आओ, ममांग दर्ई, राम दयाल मुंडा, बलदेव मुंडा, रोज केरकेट्टा, दुलाय चंद्र मुंडा, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, वाहरू सोनवणे, वंदना टेटे, गंगा सहाय मीणा और निर्मला पुतुल आदि सभी ने इनकी भयावह और शोषित स्थिति को वाणी दी है। निर्मला पुतुल की कविता 'अपने घर की तलाश में' और 'तुम कहाँ हो माया' में स्त्री की अस्मिता का सवाल उठाया है। निर्मला पुतुल ने 'तुम कहाँ हो माया' कविता में एक आदिवासी स्त्री का चित्रण किया है, जो रोजगार की तलाश में दिल्ली आती है और दैहिक शोषण का शिकार बन जाती है —

"दिल्ली के किस कोने में हो तुम ?

मयूर विहार, पंजाबी बाग या शाहदरा में ?

कनाट प्लेस की किसी दुकान में

सेल्सगर्ल हो या

किसी हर्बल कंपनी में पैकर ?

कहाँ हो तुम माया ? कहाँ हो ?

कहीं हो भी सही सलामत या

दिल्ली निगल गयी तुम्हें ?"

आज के भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समाज दुष्चक्र में फंस गया है। आज के समय में आदिवासी समाज के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपनी संस्कृति, भाषा, धर्म और स्वयं को विस्थापन से बचाने की है। इनसे जुड़े प्रश्नों की आवाज आज बुलंद होने लगी है। इस बुलंद आवाज के चलते ही यह आशा की जा सकती है कि इन्हें अपनी समस्याओं से निजात अवश्य

मिलेगी। आदिवासी लोक अब साहित्यकारों की लेखनी में दिखने लगा है। इनके संघर्षों की कहानियाँ अब तथाकथित सभ्य समाज के समक्ष साहित्यकारों के माध्यम से सामने आ रही हैं। इनमें प्रमुख हैं— 'जंगल जहां शुरू होता है', 'धूणी तपे तीर', 'गगन घटा घहरानी', 'कब तक पुकारूँ', 'पटार पर कोहरा', 'ग्लोबल गाँव के देवता' और पुन्नी सिंह का उपन्यास 'सहराना' आदि। अतः प्रसिद्ध आदिवासी कवि राजकुमार कुम्मज की प्रसिद्ध कविता 'जब किसी से मिलो' की निम्न पंक्तियाँ आदिवासी लोक के संघर्ष की गाथा को अपने मूल में प्रकट करती हैं –

“जब किसी से मिलो,
तो कुछ ऐसे मिलो कि धधकती आग से
जैसे मिलती है कच्ची रोटी”^३

संदर्भ—सूची

१ आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, विशाला शर्मा, दत्ता कोल्हारे, पृ० २१८

२ Google Wikipedia , आदिवासी साहित्य

३ आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, विशाला शर्मा, दत्ता कोल्हारे पृ० २२३

Copyright © 2018, Dr.Madhu Kaushik. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.